लोकगीतों का एक सैद्धान्तिक अध्ययन

*डॉ. हरीश चन्द्र

लोक साहित्य :–

जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान में उन्हें लोक की संज्ञा प्राप्त हैं। इन्हीं लोगों के साहित्य को लोक साहित्य कहा जाता हैं। यह साहित्य प्रायः मौखिक होता है तथा अपने परम्परागत रूप से चला आ रहा हैं। जब तक यह मौखिक होता है। तब तक ही इसमें ताजगी तथा जीवन पाया जाता हैं, लिपि के कारागार में रखतें ही इसकी संजीवनी शक्ति नष्ट हो जाती हैं।

एक समय था जिसमें संसार के समस्त देशों में मनुष्य प्रकृति देवी का उपासक था तथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उसके आचार, विचार, रहन–सहन सरल एवं स्वाभाविक थे। आडम्बनपूर्ण एवं कृत्रिमता से कोसो दूर रहता हुआ वह स्वाभाविकतापूर्ण जीवन को आनन्द व मस्तमौला की तरह व्यतीत करता था चित्त (ह्रदय) के आल्हाद के लिए मन के अनुरंजन के लिए साहित्य की रचना उस समय भी होती थी और आज भी होती हैं

परन्तु आज का साहित्य (कविता) पिंगल शास्त्र की नपी तुली नालियों, अलंकार के भार शिल्प विधान (टेक्नीक) आदि से होती हुई प्रवाहित होती हैं। हम जिस युग के साहित्य की चर्चा कर रहे हैं उस युग के साहित्य में स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता तथा सरलता प्रमुख गुण हैं। वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक हैं जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छन्दता जितना की आकाश में विचरने वाली चिड़ियाँ, उतना ही सरन्त तथा पवित्र था।

जितना गंगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का अंश अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया हैं, वही हमें लोक साहित्य के रूप में प्राप्त होता हैं?।

लोक साहित्य का श्रेणी विभाजन

लोक साहित्य जनजीवन का दर्पण हैं। जनता के ह्रदय का उद्‌गार हैं। साधारण जनता जो कुछ सोचती हैं जिन भावों की अनुभूति करती हैं जिस प्रकार का आचार विचार रहन सहन होता है, उसी का प्रकाशन लोक साहित्य में उपलब्ध होता हैं। ग्रामीण लोग विभिन्न संस्कारों के अवसर पर तथा विभिन्न ऋतुओं में लोकगीत गा गाकर मनोरंजन करते है। कहानियाँ सुनना तथा सुनान उनके मनोरंजन एवं मनबहलाव का अनन्य साधन हैं। समय–समय पर चुभती हुई लोकोक्तियों तथा भाव भरें मुहावरों का प्रयोग कर गाँवो के निवासी अपने ह्रदयगत विचारों को प्रदर्शित करते हैं। साधारण जन के अनुभव पर आश्रित कुछ सुक्तियाँ भी होती हैं जो दूसरी जगह नहीं मिलती। जनजीवन से सम्बन्धित नाटक को देखने के लिए उमड़ी भीड़ से अन्दाजा लगाया जा सकता हैं कि यही लोक साहित्य के खण्डों की लोकप्रियता का प्रमाण हैं। लोक साहित्य को प्रधानतया पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैंः–

१. लोकगीत (फ़ोक लिरिक्स)

२. लोकगाथा (फोक बैलेड् स)

३. लोककथा (फोक ड्रामा)

४. लोक सुभाषित (फोक सेइंग्स)

लोकगीत

लोक साहित्य में लोकगीत का सर्वोच्च स्थान हैं जिसका प्रमुख कारण यह हैं कि जन–मन सहज स्वाभाविकता और रसमयता के साथ इन गीतों का अपने जीवन में उपयोग करता हैं इसके क्षेत्र की विशालता भी उतनी ही हैं जिस पैमाने में मानव जन–जीवन में उपयोग करता हैं या विशाल हैं। वस्तुत लोकगीतों का अध्ययन करते समय हमारे सामने अनेक प्रश्न खड़े होते हैं कि लोकगीत क्या हैं? साधारणतः लोकगीत दो शब्दों लोक + गीत के योग से बना हैं।

लोक शब्द का अर्थः

लोक शब्द अपने आप में अर्थ विस्तार की सीमा से परे एक विशेष व्यापक शब्द हैं, जिसमें अर्थविन्यास के तौर पर सम्पूर्ण सृष्टि को भी समाहित किया जा सकता है। वृहत हिन्दी कोष में इसे विश्व का एक विशेष भाग माना गया हैं, जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल तीन लोक समाहित हैं द्य हिन्दी कोष में लोक शब्द के विभिन्न अर्थ इस प्रकार दिये गये हैं– संसार, पृथ्वी, मानवजाति, समाज, प्रजा समूह, भू–भाग, प्रान्त, निवास–स्थान, दिशा, सांसारिक व्यवहार, दृश्य यश और ७ या १४ की संख्या। इनसे कोई एक अर्थ हम अलग नही कर सकते। प्रासंगिकता के अनुसार भले ही किसी अर्थ का महत्व कम हो, परन्तु इतना निश्चित हैं कि लोक शब्द से ये सभी तात्पर्य ग्रहण किये जा सकते हैं।

वस्तुतः लोक शब्द संस्कृत के लोक दर्शन धातु में धञ् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ हैं। इस धातु का अर्थ देखना होता हैं। लट् लकार में इसके अन्य पुरुष एक वचन का रूप लोकते हैं। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ देखनेवाला। इसलिये वह समस्त जन–समुदाय जो दृष्टि निक्षेप रूप कार्य को सम्पन्न करता हैं लोक कहलाता हैं। लोक शब्द का प्रचलित अर्थ दो प्रकार का हैः– प्रथम विश्व अथवा समाज तथा दूसरा जनसाधारण आधुनिकता के सन्दर्भ में लोक का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता हैं परन्तु डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन हैं कि– लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं हैं, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह सम्पूर्ण जनता हैं, जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार नही हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं। परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता का जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के लिए – ''लोक हमारे जीवन का समुद्र हैं, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता हैं।''

यह राष्ट्र का अमर स्वरूप हैं। कृत्हन ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान हैं, अर्वाचीन में मानव के लिए सर्वोच्च प्रजापति हैं लोक और लोक की धात्री सर्वभूतरता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव ही हमारे जीवन का अध्यात्म शास्त्र हैं, इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप हैं लोक पृथ्वी और मानव इस त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।

संक्षेप में हम लोक से जीवन का तात्पर्य ग्रहण करते हैं यह जीवन परिस्थितियों के बीच देश या काल की सीमाओं के घेरे से उन्मुक्त मूल प्रकृति जीवन के साथ सम्बद्ध हैं, आज न तो इसके साथ निखिल या अखिल शब्द जोड़ा जा सकता हैं और न ही परम्परा के आधार पर इसकी व्याख्या हो सकती हैं। मानव जीवन के विषम व्याघातों के प्रहार और सृष्टि के विकास के साथ ही जीवन के अनुरूप लोक का अर्थ भी अब तक परिवर्तित होता रहा हैं ।

लोक गीत का अर्थ एवं परिभाषाः–

लोक गीत लोक के प्रचलित वे गीत हैं जो नगर संस्कृति से भिन्न ग्राम संस्कृति या लोक–संस्कृति के होते हैं।

इनको किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता, वह तो लोक मानष से तादात्मय रखता हैं और ऐसी व्यक्तित्वहीन रचना हैं जिसमें कि समस्त लोक का व्यक्तित्व उभरता हैं। लोक उसे अपनी चीज कहने लगता हैं– किन्तु समयानुसार परिवर्तन होता रहता हैं।

लोक गीत लोकजन द्वारा विशेष परिस्थिति स्थल कर्म तथा संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति हैं लोकगीत जन मानस से उत्पन्न हर्ष–विषाद मयी भाव धाराओं का व्यक्त रूप हैं। हृदय का सुख–दुख जब स्वरों में साकार होता हैं तब लोकगीतो की सृष्टि होती हैं सरलतम जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियाँ लोकगीतों में प्रश्रयपाती हैं। लोकगीत न तो नया होता है और पुराना वह तो जगंल के एक वृक्ष के समान हैं, जिसकी जड़े भूतकाल की जमीन में गहरी धंसी हुई हैं परन्तु जिसमें निरंतर नई–नई डालियाँ, पल्लव और फल उगते रहते हैं ।

परिभाषाः–

लोकगीतों की अनेक विद्वानों ने अनेक परिभाषाएँ दी हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा हैं

"जब से पृथ्वी पर मनुष्य हैं, तब से गीत भी हैं। जब तब मनुष्य रहेंगे, तब तक गीत भी रहेंगे। मनुष्यों की तरह गीतों का भी जीवन–मरण साथ चलता रहता हैं। कितने ही गीत तो सदा के लिये मुक्त हो गए, कितने ही गीतों ने देशकाल के अनुसार अपनी भाषा का चोला तो बदल डाला पर अपने असली स्वरूप को कायम रखा। बहुत से गीतों की आयु हजारों वर्ष की होगी। वे थोड़े फेर फार के साथ समाज में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं।

डॉ. के. बी. दास ने लोकगीत की परिभाषा देते हुए शब्द पर प्रकाश डाला हैं। उनका कहना हैं

कि लोकगीत उन लोगों के जीवन का अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति हैं जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।

विश्व भारती शांति निकेतन के उड़िया विभाग के अध्यक्ष डॉ. कुंजविहारीदास ने लोकगीतों की परिभाषा करते हुए लोक शब्द की भी सुन्दर व्याख्या की हैं कि

डॉ. विद्या चौहान लिखते हैं कि –

"लोक भाषा के माध्यम से स्वर और लय के संगीतात्मक आवरण में लिपटी हुई सामान्य जन समुदाय के हार्दिक रागाराग से पूर्ण भावानुभूतियाँ लोकगीत कहलाती है। जगत की विभिन्न चेष्टाओं एवं स्थितियों का प्रभावपूर्ण चित्र इन गीतों में निबद्ध रहता है

राम नरेश त्रिपाठी लिखते हैं–

श्ग्राम गीत तो प्रकृति का वह उद्यान है जो जंगलों में पहाड़ों पर नदी तटों पर स्वतंत्र विकसित हुआ है। वह अकृत्रिम है। सिद्ध कवियों की कविता किसी बंगले का वह फूल है जिसका सर्वस्व माली है पर ग्राम गीत वह फूल है, झरने जिसको पानी पिलाते है मेघ जिसे नहलाते हैं, सूर्य जिसकी आँखे खोलता है, मन्द मन्द समीर जिसे झूले में झुलाता है, चन्द्रमा जिसका मुँह चूमता है और ओस जिस पर गुलाब जल छिड़कती है। उसकी समता बंगले का कैटी फूल नही कर सकता है।

पं. हजारी प्रसाद लोकगीत को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि – ''लोकगीत की एक– एक वहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ–सौ मुग्धायें खण्डितायें और धारायें निछावर की जा सकती हैं, क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी

प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से लदी होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नही है और अपने आप में परिपूर्ण है।

डॉ. सदाशिव फड़के कहते हैं कि

"लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानों अकृत्रिम निसर्ग के श्वास–प्रश्वास है। वे भारी विद्वता के भार ते, सूक्ष्मबुद्धि की नली के हजारे से छूटनेवाला तर्क– वितर्क का फौवारा नहीं, अज्ञात मलयाचल से आने वाली सुगन्धित लहरियों से उद्‌भूत ह्रदय की सूक्ष्म तरंगें हैं। वे सहजानन्द में से ही उत्पन्न होनेवाली तथा श्रुति मनोहरता से सहजानन्द में हीं विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफायें हैं।

लोकगीतों के सम्बन्ध में ही श्याम परमार लिखते हैं कि सदियों के घात–प्रतिघातों ने इसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने इसमें अपने–अपने ताने–बाने बुने हैं। स्त्री–पुरुष ने थकथक कर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। उसकी ध्वनि में बालक सोये हैं। जवानों में प्रेम की मस्ती आई है। वृद्धों ने मन बहलाये हैं. बागियों ने उपदेश का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है. विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े–बड़े जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाये हैं और मौजियों ने चुटकुलें छोड़े हैं।

डॉ. भीमसिंह मालिक के शब्दों में –

श्लोकगीतों की कला सच्ची कला है। इनके भाव अकृत्रिम हैं। रंगत इनकी कुदरती है। स्वर उनका स्वच्छन्द है। इनमें धरती गाती है, लोग गाते हैं तथा समवेत सुर में जो चाहते हैं, वही गाते इनकी ताजगी, मधुरता तथा संगीतात्मकता प्राण, मन और आत्मा तीनों को एक साथ संतृप्त करती हैं।

अतः लोकगीत साधना में सहायक और मुक्ति के विधायक भी हैं। लोकगीतों की इन्हीं विशेषताओं के कारण ही महात्मा गांधी ने इन्हें समूची संस्कृति के पहरेदार कहा है, तो काका कालेलकर ने इन्हें आत्मशुद्धि का साधन माना है।

लोकगीतों का वर्गीकरण –

लोकगीतों का रूपात्मक श्रेणी विभाजन एक कठिन समस्या है। किसी एक सामान्य दृष्टि इस संख्या पर विचार नहीं किया जा सकता, क्योंकि लोकगीतों का जन्म किसी एक अभिप्राय की प्रेरणा से नहीं हुआ। जीवन की समस्त सूक्ष्म एवं जटिल क्रिया प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति लोकगीतों से हुई है, अतः उनको श्रेणीबद्ध करने की चेष्टा के साथ जीवन की समस्त भाव प्रेरणाओं एवं क्रिया–प्रतिक्रियाओं के साथ उनका सामंजस्य समझना आवश्यक होगा।

लोक–साहित्य के अनुसंधानों ने जीवन के विभिन्न अंगों के साथ लोकगीतों का सम्बन्ध निर्दिष्ट करते हुए, अपने–अपने ढंग से उन्हें वर्गीकृत करने का उपक्रम किया है।

उनके सम्यक् मूल्यांकन के लिए सुनिश्चित एवं पूर्ण हो। फिर भी व्यावहारिक अध्ययन एवं अनुशीलन का सुविधा के लिए लोकगीतों को वर्गों में निबद्ध करना आवश्यक है। हिन्दी लोक साहित्य के अनेक विद्वानों के द्वारा लोकगीतों का वर्गीकरण किया गया है।

हिन्दी लोक साहित्य के प्रथम चेता पं. रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतों का निम्नांकित रूप से वर्गीकरण उपस्थित किया है।

१. संस्कार सम्बन्धी गीत।

२. चक्की और चरखे के गीत।

३. धर्म– गीत।

४. ऋतु सम्बन्धी गीत।

५. खेती के गीत।

६. भिखमंगी के गीत।

७. मेले के गीत।

८. जाति – गीत।

९. वारगाथा।

१०. गीत कथा।

११. अनुभव के वचन।

त्रिपाठीजी के वर्ग–विभाजन में वैज्ञानिकता का अभाव लक्षित होता है। उसका कारण यह कि उनका उद्देश्य किसी पूर्ण वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक वर्गीकरण की खोज न होकर संग्रह– सुविधानुसार नाम भेद के आधार पर गीतों की गणना करता था। इसलिए उनके द्वारा प्रस्तुत इस वर्गीकरण में अनेक त्रुटियाँ प्रतीत होती है। भिन्न–भिन्न वर्गों के गीत प्रायरू एक ही धर्ग में सम्मिलित किये जा सकते हैं। खेती, भिखमंगी और मेले के गीतों को पृथक् श्रेणियों में रखना आवश्यक नहीं है। इसीप्रकार वीरगाथा एवं गीतकथा की एक ही श्रेणी हो सकती है।

राजस्थानी लोकगीतों के यशस्वी संग्रहकर्ता श्री सूर्यकरणजी पारिख ने भी लोकगीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जिसमें अध्ययन की दृष्टि से विचार नहीं किया गया है बल्कि त्रिपाठीजी की भाँति नाम भेदात्मक प्रणाली ही अपनाई गई है।

१. देवी–देवताओं और पितरों के गीत।

२. ऋतुओं के गीत।

३. तीर्थों के गीत।

४. व्रत–उपवास और त्यौहारों के गीत।

५. संस्कारों के गीत।

६. विवाह के गीत।

७. भाई–बहिन के प्रेम के गीत ।

८. साली – सालेज्यां सरहज गीत।

९. पणिहारियों के गीत।

१०. पति–पत्नी के प्रेम के गीत।

११. प्रेम के गीत।

१२. चक्की पीसते समय के गीत।

१३. बालिकाओं के गीत।

१४. चरखे के गीत।

१. कविता कौमुदी, भाग–५, पृष्ठ–६४

१५. प्रभाती गीत।

१६. हरजस – राध–कृष्ण के प्रेम के गीत।

१७. धमाले– होली के अवसर पर पुरुषों द्वारा गेय गीत।

१८. देश प्रेम के गीत।

१६. राजकीय गीत।

२०. राजदरवार, मजलिस, शिकार, ढारु के गीत।

२१. जम्मे के गीत वीरों, सिद्ध पुरुषों, महात्माओं की स्मृति में रखे गये जागरण को जम्मा कहते हैं।

२२. सिद्ध पुरुषों के गीत।

२३. क – वीरों के गीत।

ख– ऐतिहासिक गीत।

२४. क–ग्वालों के गीत।

ख– हास्यरस के गीत।

२५. पशु–पक्षी सम्बन्धी गीत।

२६. शान्त रस के गीत।

२७. गाँवों के गीत ग्राम्य–गीत।

२८. नाटय गीत।

२६. विविध।

पारीखजी के वर्गीकरण में भी क्रमबद्धता का अभाव है। उन्होंने हास्य श्रृंगार तथा रस को पृथक–पृथक् तीन श्रेणियों में रखते हुए गीतों का विभाजन किया है, जबकि उन्हें एक श्रेणी में रखा जा सकता था। इसीप्रकार भाई–बहिन तथा पति–पत्नी के गीत भी एक श्रेणी में निबद्ध किये जा सकते थे।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों को पाँच श्रेणियों में विभक्त किया है

१. संस्कारों की दृष्टि से।

२. रसानुभूति की प्रणाली से

३. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से 1

४. विभिन्न जातियों के प्रकार से।

५. क्रिया–गीत की दृष्टि से

***सह–आचार्य**
हिन्दी विभाग,
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
सांगानेर, जयपुर (राज.)

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, १६ वाँ भाग सं. राहुल सांस्कृत्यायन एवं उपाध्याय
2. लोक साहित्य विद्या चौहान
3. लोक साहित्य का अध्ययन, जनपद, वर्ष १, अक्टूबर १६५२, पृष्ठ–६५
4. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक में डॉ. वासुदेवशरण का लोक प्रत्यक्ष–दर्शन शीर्षक, निबन्ध, पृष्ठ– ६५
5. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन डॉ. कुलदीप
6. धूल धूसरित मणियाँ भूमिका, पृष्ठ–५
7. ग्राम साहित्य, रामनरेश त्रिपाठी, पहला भाग, पृष्ठ–५५, प्रथम संस्करण
8. पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ– १३८
9. डॉ. सदाशिव फाड़के सम्मेलन पत्रिका, लो.नं.अ., पृष्ठ– २५०
10. श्याम परमारः भारतीय लोक साहित्य, पृष्ठ–५३
11. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य – डॉ. शंकरलाल यादव सूर्यकरण पारीख, राजस्थानी लोकगीत, पृष्ठ–२२–२५
12. सूर्यकरण पारीख, राजस्थानी लोकगीत, पृष्ठ–२२–२५
13. कविता कौमुदी, भाग–५, पू ४–४५